1

वैदिक वाङ्मय की विलक्षणता और वेद प्रमाण विचार

हमारा वैदिक वाङ्मय विलक्षण है। लौकिक काव्य की अपेक्षा वैदिक काव्य विद्वानों के मन को अधिक हर्षित करता है। वैदिक काव्य के विषय में विद्वानों के मन में कोई भी संदेह नहीं है। वैदिक ऋषियों ने मनोगत भावों को प्रकट किया था। वस्तुत: तो वेद अपौरुषेय है, ऐसा आस्तिकों का मत है। ऋषियों ने केवल मन्त्रों को देखा, वे उसके कर्ता नहीं हैं। वेद में काव्य तो अपने आप ही है। किन्तु ऋषियों के मुख से ही उनका सर्व प्रथम प्रकाश होने के कारण उसे ऋषियों का काव्य कहा जाता है। वैदिक मन्त्रों में अनेक रस प्रकट होते है। उपमा आदि अलङ्कारों की उत्पति वैदिक काल में ही हुई। वैदिक वाङ्मय में अलङ्कारों का उपयोग व्यर्थ नहीं है। क्योंकि इन अलङ्कारों के द्वारा एक सूक्ष्म अर्थ प्रकाशित नहीं होता था। कवियों में श्रेष्ठ कवि होता है, वैदिक ऋषि। वैदिक मन्त्रों में प्रकृति का वर्णन भी सुंदर प्राप्त होता है। इन विषयों को हम इस पाठ में पढ़ेंगे और यहाँ हम वेद के प्रमाण विषय पर भी चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- वैदिक वाङ्मय की विलक्षणता को जान पाने में;
- वेदों में रस का विधान समझ पाने में;
- वैदिक ऋषियों के काव्य के विषय में जान पाने में;
- वेद में अलंकारों का उपयोग समझ पाने में;
- वेद में सौन्दर्य का वर्णन को जान पाने में;
- वेद के प्रमाण के विषय में जान पाने में।

टिप्पणियाँ

1.1 भूमिका

लौकिक काव्यों के द्वारा वैदिक वाङ्मय की विलक्षणता विद्यमान है। और यह विलक्षणता ही वेद के पद्यों और गद्यों में प्रकाशित है। यद्यपि लौकिक काव्य अनेक हैं, फिर भी विद्वानों को वैदिक वाङ्मय में ही अधिक आनन्द प्राप्त होता है। सम्पूर्ण काव्यों में वैदिक काव्य ही प्रथम है, ऐसा विद्वानों का मत है। लौकिक काव्यों का स्थान तो वैदिक काव्य के पश्चात् ही विद्यमान है। वेद में मिथिला आदि नगरियों का वर्णन अत्यधिक सुंदर है। जैसे वहां पर वृत्रासुर का विकराल रूप का वर्णन प्राप्त होता है, वैसा ही देवासुर सङ्ग्राम का भी वर्णन प्राप्त होता है। इन घटनाओं का वर्णन पाठकों के मन में आनन्द को उत्पन्न करता है।

वैदिक ऋषियों ने मनोगत भावों कों अच्छी प्रकार से प्रकट किया। मनोगत भावों को सुन्दर रूप से प्रकट करने के लिए अलङ्कारों की आवश्यकता होती है। ऋषियों ने भी स्थान-स्थान पर मनोगत भावनाओं कों प्रकट करने के लिए अलङ्कारों का प्रयोग किया। वैदिक मन्त्रों में भी अनेक अलङ्कार प्राप्त होते हैं। काव्य संसार में कविता जितनी प्राचीन है, उपमालङ्कार भी उतना ही प्राचीन है। कवि जहां कही पर भी अलङ्कारों का प्रयोग नहीं करता है। प्रसङ्ग के अनुसार ही उन अलङ्कारों का प्रयोग किया जाता है। और उस प्रयोग के द्वारा वह बहुत ही कठिन विषय को भी थोड़े ही पदों में अत्यधिक सरलता से प्रकट करता है। वैदिक वाङ्मय में भी अर्थ को दर्शाने के लिए अलङ्कारों का प्रयोग किया जाता है। जैसे चन्द्रमा गहरे अन्धकार से आच्छादित रात्रि को आलोकित करता है, वैसे ही अलङ्कारों के द्वारा वैदिक वाङ्मय के कठिन विषय को समझाने के लिए होता है। वहाँ पर अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, इत्यादि अलङ्कार स्थान-स्थान में प्राप्त होते हैं।

वैदिक वाङ्मय में अलङ्कारों के प्रयोग से रस का ही प्रतिपादन किया जाता है। सम्पूर्ण सन्दर्भ में ये अलङ्कार काव्य शोभा को निरंतर बढ़ाते हैं। कवि अपने अनुभव को श्रोता के हृदय तक सरलता से पहुचाने के लिए उसके अनुरूप ही अलङ्कार आदि युक्त वाक्य का प्रयोग करता है। हम इस प्रकार काव्ययुग की कल्पना भी नहीं कर सकते जहाँ उपमा आदि अलङ्कारों का प्रयोग नहीं किया।

वैदिक सूक्तों में अनेक देवताओ ने यज्ञ के प्रति समागम के लिए पार्थिव सुख के सम्पादन के लिए और आध्यात्मिक भाव के अन्वेषण के लिए अनेक छन्दों में प्रार्थना की। प्रार्थना के समय कवि ने उनकी पवित्र भावानाओं का और भव्य रूपों का अच्छी प्रकार से वर्णन किया है और व्यङ्ग्य अर्थ को बताने वाले वाक्य वहाँ विद्यमान हैं। वैदिक ऋषि उच्च विचारों को सोचने में समर्थ थे। कला रहित जीवन उनको अच्छा नहीं लगता था। वे कलाओ में कुशल जीवन को देखना चाहते थे। उनके मत में वही जीवन होता है, जिसमें कला रहती है। वेद भी जीवन कलायुक्त हो, ऐसा भाव प्रकट करता है। वेद वेदाङ्गो में कहीं पर उषा विषयक मन्त्रों में सौन्दर्य भावों को अधिक रूप से दिखाता है। और कहीं पर इन्द्र विषयक मन्त्रों में तेजस्विता की अधिकता

परिलक्षित होती है। जैसे अग्नि के रूपवर्णन प्रसङ्ग में स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग करते हैं, वैसे ही वरुण स्तुति में हृदय में आये कोमल भावों के और माधुर्य गुण का प्रकाश है। ''उतत्व: पश्यन् न ददर्श वाचं, जायेव पत्ये उषती सुवासा, द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'' इस प्रकार अनेक वाक्य वेदों में है। इन वाक्यों का अभिप्राय साहित्य शास्त्रों में अनभिज्ञ व्यक्ति जान नहीं सकता है। इसी प्रकार जो जन साहित्य शास्त्र को नहीं जानता वह व्यञ्जना के द्वारा प्रतिपादित वैदिक अर्थो को नहीं जान सकता। इसी प्रकार वैदिक मन्त्रों में काव्य के अत्यधिक गुण देखे जाते हैं, जिनका ज्ञान वैदिक मन्त्रों के अर्थ समझाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। तन्मयता से उत्कृष्ट वैशिष्ट्य वेदों में प्राप्त है। वेदों में ही भावना के सहज और सरल रूप की अभिव्यक्ति है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. उपमा काव्य संसार में कितनी प्राचीन है?
2. मनोगत भावों को प्रकट करने के लिए क्या आवश्यक होते हैं?
3. कुछ अलङ्कारों के नाम लिखिए।
4. कला रहित जीवन किनको अच्छा नहीं लगता?
5. साहित्य शास्त्रों में अनभिज्ञ व्यक्ति क्या नहीं जान सकता?

1.2 रस विधान

ऋग्वेद के मन्त्रों में अनेक रस है। अत: वे मन्त्र हमारे मन को प्रधान रूप से आकर्षित करते है। वैदिक ऋषियों के मनोगत भावों के सरल निदर्शन इन मन्त्रों में प्राप्त होती है। ऋक् मन्त्रों में इन्द्र स्तुति में वीररस का अच्छी प्रकार से वर्णन किया। दाशरात्र सूक्त में महर्षि वसिष्ठ राजा दिवोदास के तथा उसके प्रतिपक्ष के मध्य में जो सङ्घर्ष हुआ उसका सुंदर रूप से वर्णन करते हैं।

गृत्समद ऋषि ने अनेक स्तुति में वीररस को आश्रित करके इन्द्र का वर्णन किया। जैसे –

'यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासोऽयं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः॥

(ऋग्वेद में २/१२/९)

इस मन्त्र का यह अर्थ है – इन्द्र के बिना कोई भी मानवों को विजय प्राप्त नहीं करा सकता। योद्धा आत्म रक्षा के लिए उसका ही आह्वान करते हैं। सभी देवों में यह इन्द्र सर्व श्रेष्ठ है। किन्तु जो इन्द्र पद की प्राप्ति के लिए कठोर साधना करते हैं, वह उनका सङ्कल्प भङ्ग करता है। इन्द्र हि शौर्य के और शक्ति के प्रतीक हैं। यहाँ पर इन्द्र के महान वर्णन वीररस में लिखा हुआ है।

इसी प्रकार सभी स्थित भावनाओं की अभिव्यक्ति कवि के द्वारा उचित प्रकार से और प्रशंसनीय रूप से की गई है। कवि की लेखनी अत्यधिक बलशालिनी होती है। इस कारण उसका प्रत्येक पद अनेक अर्थो को प्रकाशित करता है। इसी कारण ही इन श्लोकों से काव्य सौन्दर्य, ओज छटा, रीति उन्नत रूप से पूर्णोपमा इत्यादी पाठकों के चित को अपनी और आकर्षित करती है। ऋषि के सभी प्रयास यहाँ पर वीररस को ही पोषित करते हैं।

सौन्दर्य ही काव्य का 'रस' ऐसा विद्वान भी स्वीकार करते हैं। कवि उस रस को ही साधकर काव्य की रचना करते हैं। वह रस श्रृंगार, करुणा, आदि भेद से नौ प्रकार का है। नौ रसो में भी श्रृंगार नाम का रस रसराज है, ऐसा सभी साहित्य शास्त्रज्ञ बताते हैं। जैसे श्रृंगार रस हमारे मन को प्रसन्न कर सकता है, वैसे अन्य रस प्रभावित नहीं कर सकते। इसलिए वह रसों में श्रेष्ठतम है। वह श्रृंगार रस संभोग श्रृंगार और विप्रलम्भ श्रृंगार भेद से दो प्रकार का है। इनके मध्य में विप्रलम्भ श्रृंगार अत्यधिक मधुर है। वहाँ मन काव्य के प्रतिपादित विषयों में अनायास से ही रमण करने लगता है। उससे उत्तम और मधुरतम कोई भी रस प्राप्त नहीं होता है।

ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में श्रृंगार रस का उल्लेख प्राप्त होता है। वहाँ एक सूक्त में पुरूरवा-उर्वशी विवाह प्रसङ्ग में विरह पीड़ित नायक के कथन में विप्रलम्भ श्रृंगार रस का सङ्केत प्राप्त होता है –

'इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः।
अवीरे क्रतौ विदविधुवन्नोरा न मायुं चितयन्तः धुनयः॥'

श्रृंगार रस के आभास का सङ्केत भी यमयमी सूक्त में (१०/१०) उपलब्ध होता है। जहाँ यमी अपने भाई यम के समीप जाकर के सङ्गम के लिए प्रार्थना करती है। परंतु यम उसके प्रलोभन से आकृष्ट नहीं हुआ।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. दाशरात्र सूक्त में किसके द्वारा राजा दिवोदास के तथा उनके प्रतिपक्षि के सङ्घर्ष का सुंदर वर्णन किया गया है?
2. किस ऋषि ने अनेक स्तुति में वीररस का आश्रय लेकर के इन्द्र का वर्णन किया?
3. किसके बिना कोई भी मनुष्य विजय को प्राप्त नहीं कर सकता?
4. शौर्य के और शक्ति के प्रतीक कौन हैं?
5. कवि किसको साधकर काव्य को लिखते हैं?
6. नौ रसों में किस रस को रसराज के रूप में सभी साहित्य शास्त्रज्ञ बताते हैं?

7. शृंगार रस के दो भेद कौन से हैं?

8. शृंगार रस के दो भेदों के मध्य कौन सा शृंगार अत्यधिक मधुर है?

9. शृंगार रस के आभास का सङ्केत कहाँ पर उपलब्ध होता है?

1.3 अलंकारों का विधान

ऋग्वेद के मन्त्रों में अलङ्कारों का प्राचुर्य दिखाई देता है। ये अलङ्कार अपने आप उत्पन्न हुए है। वैदिक अलङ्कारों में जो सुन्दरता, जो कुशलता और जो रचना दिखाई देती है, वह अन्यत्र नहीं प्राप्त होती है। वैदिक ऋषि कवियों में श्रेष्ठ कवि हैं। वह प्रेम का परम उपासक महान भावुक और सौन्दर्य प्रियों में शिरोमणि है। इसलिए जगत का सभी ज्ञान उसका है। अलङ्कार सौन्दर्य को प्रकट करने का भी साधन है। ये अलङ्कार कवि कथन को प्रभावशाली करने में, विषयों को रमणीय बनाने में, और हृदयगत भावों को प्रकाशित करने में सभी रूप से समर्थ हैं। रूपक तो वेद का एक प्रशंसनीय और प्रसिद्ध अलङ्कार है। वेदों की शैली ही रूपकमयी है। सुन्दर उपमानों की यहाँ पर सुन्दर रूप से आलोचना की है। अन्य अलङ्कारों में भी अतिशयोक्ति अलङ्कार का, व्यतिरेक अलङ्कार का और समासोक्ति अलङ्कार का प्रयोग यहाँ दिखाई देता है। वहाँ पर उपमा अलङ्कार का उदाहरण जैसे –

'अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्त्ता रुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेवः निरिणीते अप्सा॥' इति॥

इस मन्त्र का यह अर्थ है – कभी उषा भाई रहित बहिन के समान अपने दायभाग को प्राप्त करने के लिए पितृ स्थानीय सूर्य के समीप आती है। कभी पति को प्रसन्न करने के लिए सुंदर वस्त्रों को धारण करती है। कभी काम में आसक्ता कामिनी के सामान पति के सामने अपने सौन्दर्य को प्रकट करती है।

वैदिक कवि ने समीप रहने वाले पशु जीवन का भी उपमान रूप में प्रयोग किया। शाम के समय में अपने स्थान में वापस आती हुई गायों को देखते हुए उनको अत्यधिक प्रसन्नता होती है।

इन्द्र स्तुति में (१/३२) अङ्गि रस हिरण्यस्तूप ऋषि की यह उक्ति है, जब त्वष्टा द्वारा निर्मित स्वर युक्त वज्र से इन्द्र ने पर्वत आश्रित वृत्रासुर को मारा तब रम्भाति हुई गाय बछड़े के समीप जाती है, उसी प्रकार जल समुद्र की तरफ गया –

'अहन्नहिपवते शिश्रियाणां त्वष्टास्मै वज्रं स्वयं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमवदग्मुरापः॥' इति॥

– ऋग्वेद १/३२/२

सामान्य रूप से यह अर्थ बहुत पदो से वर्णन किया जाता है, परन्तु उपमा अंलङ्कार के प्रयोग से वह अर्थ थोड़े पदो से ही प्रकाशित होता है। जैसे 'वाश्रा धेनवः' इस पद के द्वारा ऋषि ने

टिप्पणियाँ

वृष्टि के साथ शब्द करती हुई धेनु के साथ समानता प्रकट की है। यहाँ पर वह वेदपाठकों के सामने झञ्झावत के साथ वृष्टि, समुद्र के प्रति जल का वेग प्रवाह, उस वर्षा का अत्यधिक सुंदर और सरल शब्दों में वर्णन किया है।

हृदय वृत्ती का अच्छे रूप से प्रकट करने के लिए वरुण सूक्तों का अनुशीलन करना विशेष रूप से सहायक होता है। ऋग्वेद के एक सूक्त में (ऋग्वेद ७/८६) अपने आराध्यदेव वरुण के प्रति महर्षि वसिष्ठ की विनम्रता प्रकट की। वहाँ ऋषि आत्मा से पूंछते हैं - कब मैं वरुण की मैत्री को प्राप्त करुंगा। क्रोध से रहित होकर कब वरुण मेरी दी हुई हवि को ग्रहण करेंगे। कब मैं प्रसन्न मन होकर उसके प्रसाद को प्राप्त करूंगा।

'उतस्वया तन्वा संवदे तत्कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेव कदा मृडीकं सुमना अभिख्यम्॥' इति॥

(ऋग्वेद ७/८६/२)

यहाँ महर्षि वशिष्ठ वरुण देव से प्रार्थना करते हैं - हे देव! मेरे किये हुए द्रोह को छोड़ दो। उन द्रोहों को और विरोध को दूर कर दो, जो मैंने अपने शरीर से किये। जैसे पशुओं का अपहरण करने वाला चोर अथवा रस्सी से बंधे हुए बछड़े को लोग मुक्त करते हैं, वैसे ही मेरे अपराध से बंधे हुए वसिष्ठ को तुम छोड़ दो।

'अव द्रुग्धानि पित्र्या सृज्या नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः।
अव राजन् पशुतृपं न वायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम्॥' इति॥

- (ऋग्वेद ७/८६/५)

इस सूक्त में आत्म समर्पण, नम्रता, दीनता, अपराध स्वीकृति, इत्यादि विशाल भावना देखते हैं। यह सूक्त उन वैष्णव भक्तों की वाणी को स्मरण कराते है, जहाँ वे हजार अपराधों को करके भी भगवान के साक्षात् करना चाहते हैं।

सूर्योदय का दृश्य भी अत्यधिक मनोहर है। इसका वर्णन बहुत से अलङ्कारों को आश्रित करके किया। प्रभात वर्णन प्रसङ्ग में वह कहता है, की कोई मनुष्य कुछ भी चर्म को लेकर जल के अंदर रखते हैं, वैसे ही सूर्योदय होने पर उसकी किरण अन्धकार को छुपा देती है -

'दविध्यतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः।' (ऋग्वेद ४/१३/४)

रूपकों की भी बहुलता ऋग्वेद के मन्त्रों में उपलब्ध है। सूर्य आकाश की सुनहरी मणि है -**''दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति'' इति (ऋग्वेद ७/६३/४)**। सूर्य जलता हुआ पत्थर का टुकड़ा है, जो आकाश में रखा हुआ है - **''मध्ये दिवो निहितः पृश्नरश्मा'' इति (ऋग्वेद ५/४७/३)**। अग्नि अपने प्रभा से आकाश को स्पृश करती है - **''धृतप्रतीको बृहता दिवि स्पृशा" इति (ऋग्वेद ५/१/१)**। यह स्पष्ट ही है, की ये मन्त्र अतिशयोक्ति मूलक है। ऋग्वेद में अतिशयोक्ति के अनेक

उदाहरण हैं। वहाँ सायणाचार्य के अनुसार यज्ञ की, पतञ्जलि के अनुसार शब्द की, अथवा राजशेखर के अनुसार काव्य की स्तुति कि गई है। वैसे ही –

'चत्वारि शृङ्गास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासौ अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्याम् आविवेश॥ इति॥

(ऋग्वेद ४/५८/३)

और भी उदाहरण हैं –

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभचाकशीति॥' इति॥

इस मन्त्र का यह अर्थ है – अच्छे पक्षधर वाले, साथ रहने वाले, समान ख्याति वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष के ऊपर स्थित हैं। उन दो विहगों में एक अच्छे स्वाद वाले फलों को खाता है, और दूसरा तो बिना खाते हुए देखता रहता है। यहाँ दो पक्षियों से जीवात्मा और परमात्मा की उपमा की गई है। यहाँ पर अतिशयोक्ति अंलङ्कार है। दोनों पक्षियों का स्वभाव समान नहीं है। उस व्यतिरेक अंलङ्कार का भी गूढ़ सङ्केत यहाँ प्राप्त होता है। व्यतिरेक का अन्य उदाहारण भी ऋतु चक्र के वर्णन में प्राप्त होता है, जैसे – 'द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वत्ति चक्रं परिधामृतस्य' इति। (ऋग्वेद १/१६४/११)।

उपनिषदों में भी अनेक अलङ्कारों के दृष्टान्त प्राप्त होते है। कठोपनिषद् में रथ के रूप में शरीर है, (१/३/३)। ऋग्वेद में ऋतु वर्णन पर अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं। पर्जन्य सूक्त में (५/८३) वर्षा काल का अत्यधिक सुंदर वर्णन है। मण्डूक सूक्त में भी (७/१०३) वर्षा काल का एक रमणीय दृश्य का वर्णन है। वहाँ एक मेंढक के शब्द को सुनकर दूसरा भी ध्वनि करता है। जैसे गुरु वेदपाठ करता है, और शिष्य उसका अनुसरण करते है, वैसे ही यह मेंढक ध्वनि है –

'यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत् सुवाचो वदतनाध्यप्सु॥ इति॥'

इस प्रकार से अलङ्कारों की किरण आलोचकों की दृष्टि को अनायास ही आकर्षित करती है।

पाठगत प्रश्न 1.3

1. वेदों में प्रशंसनीय अलङ्कार कौन सा है?
2. वेदों की शैली कैसी है?
3. ऋतु वर्णन परक मन्त्र कहाँ प्राप्त होते हैं?
4. व्यतिरेक का सुंदर उदाहरण कहाँ प्राप्त होता है?

टिप्पणियाँ

1.4 सौन्दर्य की कल्पना

उषादेवी के विषय में जो सूक्त प्राप्त होते हैं, उनकी पर्यालोचना से ज्ञात होता है, की जो ये सूक्त है, काव्य दृष्टि से भी अत्यंत सरल और भव्य भाव से पूर्ण है। प्रभात काल में सूर्य की किरणों से आलोकित पूर्व आकाश किस सहृदय के हृदय को आनन्दित नहीं करता है। वैदिक ऋषि उस सौन्दर्य को प्रेम से ही देखते हैं। उस दिव्य रूप को देखकर वह मोहित होता है।

किसी भी पदार्थ का स्वाभाविक रूप से जो वर्णन होता है, वही वर्णन कला को उत्कृष्ट रूप को प्रकाशित करता है। जो रस्किन महोदय ने कहा की वैदिक ऋषि सम्यक् रूप से प्रकृति का वर्णन करते हैं। प्रकृति वर्णन में उषादेवी के सौन्दर्य कथन करने में और उसके निरीक्षण करने में सहृदय के पट पर और अधिक कल्पनाशक्ति को विशेष रूप से प्रकाशित करता है। इससे ज्ञात होता है की शैशव अवस्था से ही प्रकृति माता की गोद में ही ऋषियों का लालन और पालन हुआ। अत उषाकाल के वर्णन में प्रकृति वैसे विराजमान होती है, जैसे मणिमाला में स्वर्णसूत्र विराजमान है। उषा केवल बाहरी सौन्दर्य को ही प्रकाशित नहीं करती अपितु वह कवि के आन्तरिक सौन्दर्य को भी निरंतर प्रकाशित करती रहती है। यहाँ उषादेवी के कोमल भावों का, कठोर भावों का, और शीत स्पर्श का वैसे ही मनोहर वर्णन किया जिससे पाठकों के मन में निरंतर उल्लास बना रहे।

वैदिक ऋषि की प्रतिभा उषादेवी के चरित्र चित्रण में सभी रूप से कुशल ही है। कवि ने यहाँ पर उषादेवी का जो चरित्र चित्रण किया वह सहृदयों के हृदय में उल्लास को उत्पन्न करता है। इसी कारण ही कवि कहता है कि – "हे प्रकाश देने वाली उषा ! तुम कमनीय कन्या की तरह अत्यन्त आकर्षणमयी होकर इच्छित फल देने के लिए सूर्य के समीप जाती हो, किन्तु वहाँ जाकर सूर्य के सामने स्मित आनंद देने वाली तरुणी के समान अपने वक्ष-स्थल प्रदेश को खोल देती हो। तेरे इस प्रकार के रूप को कौन भूल सकता है। अथवा खुले हुए वक्ष स्थल को देखकर कौन मनुष्य प्रेरणा को प्राप्त नहीं करता है।" वैसे ही –

'कन्येव तन्वा शाशदानां एषिदेवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुसे विभाती।।' इति।।

– (ऋग्वेद १/१२३/१०)

यहाँ कवि में मानवीकरण की भावना अत्यन्त बलवान है। यहाँ उषादेवी का कुमारी रूप की कल्पना की है। और वह भावना सुंदर शरीर की तरह उसके सुन्दर स्वरूप को प्रकट करती है। युवति कन्या की कल्पना उसका सूर्य के समीप में जाना इत्यादि भावना यहाँ कवि की व्यापक दृष्टि का बोध कराती है।

कवि ने उषादेवी के विषय में अन्य भी कल्पना की है। उषा अपने प्रकाश से संसार को वैसे ही पवित्र करती है, जैसे कोई भी योद्धा अपने शस्त्रों का घर्षण से उनका संस्कार करते हैं। वैसे ही –

''अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरा न बोलहा।' इति॥

– (ऋग्वेद ६/६४/३)

उषा अपने प्रकाश को वैसे ही विस्तृत करती है, जैसे गोपालक गोचर भूमि में अपनी गायों को फैलाता है। अथवा जैसे कोई भी नदी अपने जल को फैलाती है –

''पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्नक्षोद उर्विया व्यश्वैत।''

– (ऋग्वेद १/९२/१२)

उषा का प्रतिदिन निकलने से उसके अमरत्व का भी यहाँ वर्णन किया है –

''उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्य मृतस्य केतुः।''

– (ऋग्वेद ३/६/३)

कवि की दृष्टि में उषादेवी का जाना आना पहिये के समान है। जिस प्रकार से पहिया हमेशा ही ऊपर नीचे होता रहता है, वैसे ही उषादेवी भी नित्य उत्पन्न होती रहती है –

''सामानामर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्यावर्वृत्स्व।''

– (ऋग्वेद ३/६/३)

पाठगत प्रश्न 1.4

1. उषा वर्णन में प्रकृति कैसे शोभित होती है?
2. उषादेवी अपने प्रकाश को कैसे फैलाती है?
3. उषादेवी सूर्य के सामने जाकर के क्या करती है?

1.5 प्रकृति का चित्रण

प्रकृति का वर्णन दो प्रकार से हो सकता है –

1.5.1 अनावृत वर्णन

प्रकृति में स्वयं के आलम्बन से वर्णन को अनावृत्त वर्णन कहते हैं। यहाँ प्रकृति का प्राकृतिक माधुर्य कवि के हृदय को आकृष्ट करता है, वैसे अनिर्वचनीय आनन्द से कवि के मन को संतुष्ट करता है।

1.5.2 अलङ्कृत वर्णन

अलङ्कृत वर्णन में प्रकृति का तथा उसके व्यापारों का मानवीकरण होता है। वहाँ प्रकृति चेतन प्राणि के समान अनेक कार्यो को पूर्ण करती है। वह कभी स्मित मुख वाली कुमारी के समान दर्शकों के हृदय को आकृष्ट करती है। कभी भयानक जंतु के समान हमारे हृदय में भय और क्षोभ को उत्पन्न करता है।

उषा देवी के वर्णन में वैदिक कवि की दो प्रकार की भावना प्रकाशित होती है। पूर्व की दिशा में प्रभात उषा के स्वरूप को देखकर वैदिक कवि के हृदय आनन्द से पूर्ण होकर कहता है –

''उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आत्था वहन्तु सुयमासो अश्वाः हिरण्यवर्णा पृथववाजसो ये।'' इति॥

– (ऋग्वेद ३/६१/२)

इस मन्त्र का यह अर्थ है की – हे प्रकाश से पूर्ण उषादेवी ! तुम सुवर्ण रथ में आरूढ हो। तुम ने अमृत प्राप्त किया। इसलिए तुम दिव्य हो। तेरे उदय काल में पक्षी सुनने में मधुर ध्वनि करते है। स्वर्ण वर्ण सुशिक्षित और सुदर्शन घोड़े सम्पूर्ण पृथ्वी बल से तुम को ले जाते हैं।

अलङ्कृत वर्णन अवसर में उषा के मनोहर रूप का और व्यापार का हृदयग्राहि वर्णन प्राप्त होता है –

जायेव पत्या उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः। (ऋग्वेद १/१२४/७)

यहाँ कवि नारी के कोमल हृदय का स्पर्श करता है। नारी जीवन प्रेम पूर्ण होता है। प्रेम से प्रकृति में भी प्राणप्रद शक्ति का सञ्चार होता है। प्रेम से प्रकृति जीवित होती है, और श्वास में बढ़ते हैं। जीवन का मूलभूत लक्ष्य ही नारी प्रेम है। केवल नारी नहीं अपितु नर और नारी दोनों ही वहाँ पर अपेक्षित है। वैदिक कवि ने उषा के रूप वर्णन से मानव जीवन के प्रेमरूप प्रधान तत्त्व का ही वर्णन किया है। वह चाहते हैं की जीवन प्रेम से पवित्र हो। उसके मत में वह प्रेम नहीं है, की जो अनाचार दोष से दूषित हो अथवा स्वार्थ विशेष साधक हो। उससे वह पवित्र प्रेमपूर्ण जीवन में ही अत्यधिक श्रद्धा को प्रकट करते है।

पाठगत प्रश्न 1.5

1. जीवन का प्रधान लक्ष्य क्या है ?
2. क्या प्रकृति से प्राणप्रद शक्ति का संचार होता है?
3. घोड़े किस बल से उषादेवी को ले जाते है?
4. अलङ्कृत वर्णन में किनका मानवीकरण होता है?
5. कवि ने कहाँ पर श्रद्धा को प्रकट किया?

1.6 वेदों की प्रमाणिकता

लक्षण और प्रमाण के बिना किसी भी वस्तु की सिद्धि नहीं होती है। वैसे ही कहते है - लक्षण और प्रमाण से वस्तु की सिद्धि होती है। वेद के लक्षण विषय में इससे पूर्व हमने आलोचना कि है। इस परिच्छेद में हमारा आलोचना का विषय वेदप्रामाण्य है। वहाँ आदि में यह प्रश्न निकलता है की किस प्रकार का वाक्य प्रमाणिक है। वहाँ उत्तर है की जिस वाक्य के अर्थ विषय में सन्देह का अवकाश नहीं है, जिस वाक्य के अर्थ पूर्व अज्ञात अथवा समझा नहीं होता है, जिस वाक्य के अर्थ विषय में कोई भी बाधा नहीं है, अर्थात् जिस वाक्य के अर्थ किसी भी अनुभव से खण्डित नहीं होता है, उस प्रकार का वाक्य ही प्रमाणिक है। उससे ही कहा - 'असन्दिग्ध -अनधिगत-अबाधित अर्थ बोधक वाक्य प्रमाण' है।

जब वेद वाक्यों में सन्देह, ज्ञात अर्थ का बोध, बाधा इत्यादि दोष नहीं रहते तब वाक्य को प्रमाण रूप से मानते है। प्राचीन काल से आरम्भ करके चार्वाक आदि ऋषि तक वेद विरोधी सम्प्रदाय ने वेद की प्रमाणिकता का खण्डन करने के लिए अनेक युक्तियाँ सामने रखी। वेद के प्रमाण को नित्य अपौरुषेय इत्यादि गूढ तत्त्व महर्षि जैमिनि ने उनके पूर्वमीमांसा ग्रन्थ में प्रस्तुत किया। वह चार्वाक आदि के मत को पूर्वपक्ष मत रूप से स्थापित करके उनके मतों का खण्डन करते हैं। महर्षि जैमिनि ने वेद विरोधी वाक्यों के खण्डन के लिए जो युक्ती सम्मुख रखी, और उसके विवरण को भी कैसे वह उन वेद विरोधी युक्तियों का खण्डन करते हैं। इस विषय पर इस पाठ में आलोचना की जायेगी।

कुछ प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और आगम प्रमाण से वेद के अस्तित्व का प्रतिपादन करते है। विद्वान पुरुषो के उपदेश ही शब्द प्रमाण है - 'आप्तोपदेशः शब्दः' इति। यह शब्द प्रमाण वेद के अस्तित्व को बताने में समर्थ नहीं है। क्योंकि यह प्रमाण जैसे वेद में प्रयुक्त दिखाई देता है, वैसे ही वेद से बाहर स्मृति शास्त्र में भी। इसलिए यह शब्द प्रमाण वेद के अपने नहीं है। यहाँ दोष है। मुण्डक-उपनिषद में ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद और अथर्ववेद का उल्लेख है। छान्दोग्य उपनिषद में नारद ने जब पढ़े हुए शास्त्रों के विषय में सनत्कुमार के प्रति जो कहा, तब चारो वेदों का भी उल्लेख किया। यदि कहते वेद के मध्य में ही वेद चतुष्टय के नाम का उल्लेख है, तो ये उक्तियाँ वेद के अस्तित्व में प्रमाण है, तो आत्म आश्रय रूप के दोष का आविर्भाव होता है। स्मृति ग्रन्थों में वेद का उल्लेख है, इस कारण स्मृति ग्रन्थ वेद के अस्तित्व को प्रमाणिक करते ऐसा तो वहाँ पर भी दोष है। क्योंकि स्मृति ग्रन्थों के प्रमाण वेद के प्रमाण का आश्रय लेते है। मीमांसकों का कहना है की स्मृति संबंधी शास्त्रों में और लौकिक ग्रन्थों में आत्माश्रयत्व दोषरूप से गिनते हैं। परन्तु स्वयं सिद्धि के वेदे अपने प्रमाण के अपौरुषेय वेद के विषय में आत्म आश्रयत्व दोष दोषरूप से नहीं मानते है। वेद के अलौकिक शक्तिशाली होने से वेद वाक्य ही वेद के अस्तित्व को बताते है। इसलिए वेदांत में, उपनिषद् वाक्य में और ऋक्संहिता के अन्तर्गत पुरुष सूक्त में ऋक्-साम-यजुर्वेद का उल्लेख वेद के अस्तित्व विषय में प्रमाण है। पूर्वपक्षी कहते है की वेद है, परन्तु प्रमाण सिद्ध में फिर भी वेद वाक्यों के प्रमाण स्वीकार्य नहीं हैं। क्योंकि वेद वाक्य को सन्देह- ज्ञात अर्थ बताने में -व्याघात आदि भी दोषो से मुक्त नहीं है। कुछ वेद वाक्यों का कोई भी अर्थ ही नहीं है जैसे -

टिप्पणियाँ

'अम्यक् स्यात इन्द्र ऋष्टिः' (ऋग्वेद१-१६९-३)'
'सृण्येव जर्भरी तुर्फरी तु पर्फरी फर्फरीका' (ऋग्वेद १०-१०६-६)'
'आपास्तमन्युस्तृपल प्रभर्मा' (ऋग्वेदः१०-८९-५)' इत्यादि।

ये मन्त्र उन्माद व्यक्तियों के प्रलाप के समान अर्थहीन हैं। यहाँ हमारा कथन है की निरुक्त-व्याकरण आदि तक वेदाङ्गों के अध्ययन से इन मन्त्रों के अर्थ जाने जाते है। यास्काचार्य ने निरुक्त में इन मन्त्रों की व्याख्या की। इसलिए जिन्होंने निरुक्त आदि ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया, वे इन मन्त्रों के अर्थ नहीं समझ सकते हैं। इस कारण जो मंत्रों के अर्थ को नहीं जानते उनका ही यह दोष है, वेद का नहीं। जैसे अन्धा जाते समय में यदि खम्भे से आघात को प्राप्त करता है, तो वह दोष उस अन्धे की दृष्टिहीनता है, स्तम्भ का कोई दोष नहीं है - **'नायं स्थानोरपराधो यदेनम् अन्धो न पश्यति'**। इस प्रकार ही सिद्धान्त पक्षकार उनके मत को सम्मुख रखते हैं।

कुछ वेद मन्त्रों के अर्थ सन्दिग्ध है, अर्थात् उनका प्रकृत अर्थ क्या है, इस विषय में मन में सन्देह होता है। जैसे - 'अधस्विदासीदुपरिस्विदासीत्' (ऋग्वेद १०-१२९-५) अर्थात् वह नीचे भी था, और ऊपर भी था। ऐसे मन्त्रों में सन्देह के होने से वेद वाक्य को प्रमाण नहीं मान सकते है ऐसा पूर्वपक्षी कहते हैं। इस प्रश्न के उत्तर रूप में कह सकते है कि उक्त मन्त्र में सन्देह का कारण नहीं है। यह मन्त्र ऋग्वेद के सृष्टि सूक्त से (१०-१२९) लिया है। जगत के मूलकारण का, और परब्रह्म के अपूर्व सृजन शक्ति का तथा अलौकिक महिमा का वर्णन इस सूक्त में है। थोड़ी सी शक्ति वाले मनुष्य का एक साथ ऊपर और नीचे होना सम्भव नहीं है। परन्तु जिसकी सत्ता सम्पूर्ण विश्व में ओत प्रोत रूप से व्याप्त है, और सुना जाता है कि वह परब्रह्म एक साथ ऊपर -नीचे और सभी जगह रह सकता है। अत अर्थ में संदेह करने वाले दोष का अवकाश नहीं है, ऐसा सिद्धान्तियों का मत है।

कुछ मन्त्रों में अचेतन पदार्थो का सम्बोधन चेतन के समान देखा जाता है। जैसे - ब्लेड को लक्षित करके एक मन्त्र में कहते है - **'स्वधिते नैनं हिंसीः' इति। (तैत्तिरीयसंहिता १-२-१-१)**। अर्थात् हे ब्लेड! तुम इसकी हिंसा मत करो। **'शृणोत ग्रावाणः' (तै.सं१-३-१३-१)**। हे पत्थर गणों! तुम सभी श्रवण करो इत्यादि। अचेतन पदार्थ का इस प्रकार चेतन के समान सम्बोधन कोई भी नहीं करता है। यह अनुभव के विरुद्ध और युक्ति के विरुद्ध है। अतः इन वेद मन्त्रों के अर्थ अनुभव से बाधित हैं। यहाँ बाधित अर्थ दोष आता है, ऐसा पूर्वपक्षकारों का मत है। इसके उत्तर रूप से यहाँ कहते है कि इन मन्त्रों में अचेतन पदार्थ का सम्बोधन नहीं है। परन्तु अचेतन पदार्थो के अभिमानी देवताओं के लिए सम्बोधन है। प्रत्येक पदार्थ में चेतन का अनु-श्रवण किया जाता है, और वहाँ चेतन के अभाव में जड़पदार्थो के अभिमानी देवता को संबोधित किया जाता है। इस तत्त्व की आलोचना भगवान् वेदव्यास ने अपने रचित ब्रह्मसूत्र के 'अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्' (ब्रह्मसूत्र २-१-५) - इस सूत्र में की है। मन्त्रों में जिस स्थल पर अचेतन का चेतन के समान सम्बोधन अथवा व्यवहार सुना जाता है उस स्थल पर उस अभिमानी देवता के चेतन सत्ता को आमन्त्रित किया ऐसा समझना चाहिए। इसलिए उस स्थल पर बाधित अर्थ के दोष का अवकाश नहीं है। जगत में कोई भी पदार्थ सम्पूर्ण रूप से जड़ नहीं हो सकता है, क्योंकि चेतन सत्ता सभी

जगह व्याप्त है। नाम और रूप को रचकर परम पुरुष परमात्मा उसके मध्य में रहता है – उसको रचकर उस में ही प्रवेश करता है। उसका रूप ही विश्व के सभी रूप है। आपात काल में जो जड़ को उस प्रकार के पदार्थ का यदि कोई भी सम्बोधन करता है, तब यह जानना होता है की उस पदार्थ में वर्तमान चेतन सत्ता का सम्बोधन होता है। इस कारण किसी भी संकट की आशङ्का नहीं होती ऐसा सिद्धान्तियों का मत है।

पूर्वपक्षी सिद्धान्तियों के उत्तर से असन्तुष्ट होते हुए पुनः आपत्ति जताते हैं। कुछ वेद मन्त्रों में परस्पर विरोध दिखाई देता है। उदाहरण के लिये एक मन्त्र हि- 'एक एव रुद्रो न द्वितीयः अवतस्थे' (तैत्तिरीयसंहिता १-८-१-१), अर्थात् रुद्र एक ही है, दूसरा रुद्र नहीं है। किन्त दूसरे मन्त्र में कहते है – 'सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधिभूम्याम्' (तैत्तिरीयसंहिता ४-५-११-५), अर्थात् पृथिवी पर हजारो रुद्र हैं। ये दोनों मन्त्र परस्पर विरुद्ध हैं, इस कारण विपरीत अर्थ दोष स्वीकार नहीं है। कोई भी स्वयं कहता है, कि मैं सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त होकर मौनी हूँ। वहाँ जो उसका मौन है। यह वचन ही मौनव्रत विरुद्ध होता है, वैसा दोष प्रकृत स्थल पर आता है। इसके समाधान रूप में कह सकते हैं, की मनुष्य एक ही काल में एक और अनेक दोनों रूप नहीं हो सकते है। परन्तु अलौकिक शक्तिशाली रुद्र अपने स्वयं के बल से हजारो रूप धारण करने में समर्थ है। इस कारण वेद वाक्य उक्त दोष से मुक्त ही है।

पाठगत प्रश्न 1.6

1. वस्तुओं की सिद्धि के लिये क्या क्या आवश्यक होता है?
2. किस प्रकार का वाक्य प्रमाण है?
3. वेद के प्रमाण, नित्यत्व, अपौरुषेयत्व इत्यादि गूढ तत्त्वों को कहाँ स्थापित किया गया है?
4. किनके द्वारा वेद के अस्तित्व को प्रतिपादित करते हैं?
5. क्या शब्द प्रमाण है?
6. चारो वेदों का उल्लेख कहाँ है?
7. वेद के विषय में कौन सा दोष दोषरूप से नहीं मानते है?
8. नाम और रूप को रचकर परम पुरुष परमात्मा उसके मध्य में प्रवेश करता है इस विषय में कौन सी श्रुति है?

1.7 वेद के छः दर्शनो में प्रमाण का प्रतिपादन

न्याय, साङ्ख्य, मीमांसा आदि दर्शनो के आचार्य शब्द को प्रमाण रूप से स्वीकार किया। वे शब्द प्रमाण से ही वेद के अस्तित्व को स्वीकार किया। लौकिक वैदिक भेद से शब्द दो प्रकार के हैं।

लौकिक वाक्य अन्य प्रमाण से सिद्ध होते है। परन्तु वैदिक वाक्य शब्द प्रमाण से ही सिद्ध होते है। वहाँ अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। साङ्ख्य दर्शन में शब्द प्रमाण को ही श्रुति कहा है। साङ्ख्य दर्शन में लौकिक वाक्यों के शब्द प्रमाण में अन्तर्भाव स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि उनके लिए लौकिक वाक्य प्रत्यक्ष से अथवा अनुमान से ग्रहण करते है। इसलिए ही लौकिक वाक्य स्वयं प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्ष अनुमान से ही उनका प्रमाण स्वीकार है। वैसे ही साङ्ख्य सूत्र में कहा है – निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतप्रामाण्यम् (५.५१)। और इस प्रकार साङ्ख्य ने वेद को स्वतः प्रमाण को ही सिद्ध किया है।

वैशेषिक दर्शन में कणाद ऋषि ने वेद के प्रमाण को स्वीकार किया। उन्होंने कहा की वेद ईश्वर का वचन है। अतः उसकी अभ्रान्तियाँ और प्रमाण सिद्ध है। और कहते है – **''तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।** यहाँ आम्नाय शब्द का अर्थ वेद है।'' इति।

पाठगत प्रश्न 1.7

1. साख्य दर्शन के मत में शब्द प्रमाण क्या है?
2. साख्य दर्शन के मत में लौकिक वाक्यों का अन्तर्भाव कहाँ स्वीकार नहीं है?
3. वैशेषिक दर्शन के आचार्य कौन है?
4. आम्नाय शब्द का क्या अर्थ है?

पाठ का सार

इस पाठ में वेद के अनेक स्थलो में प्रयुक्त रस, अंलङ्कार आदि का विशाल वर्णन किया गया है। उपमा आदि अलंकारो का अवतरण उतना ही प्राचीन है जितना जगत में कविता प्राचीन है। ऋग्वेद ही प्राचीनतम वेद है। ऋग्वेद के मन्त्रों में उपमा आदि अलंकारो का प्रयोग देखा जाता है। काव्य में रस ही प्रधान है। रस काव्य की आत्मा है, ऐसा आलंकारिक मानते हैं। उस रस को प्रतिपादित करने के लिये सभी कवि प्रयत्न करते हैं। वैदिक कवि भी रस का प्रतिपादन करने में परम दक्ष थे। वैदिक कवियों के काव्य में जैसे रस की उत्कर्षता है वैसी उत्कर्षता लौकिक कवियों के काव्य में नहीं दिखाई देती है। अत रस प्रतिपादन में वैदिक वाङ्मय विलक्षण है। रसों में प्रधान शृंगार भी वेद में वर्णित है। शृंगार रस प्रतिपादन में उषा सूक्त अन्यतम है। उषा विषयक मन्त्रों के अनुशीलन से हम वैदिक ऋषियों की प्रकृति के प्रति उदार भावना को जान सकते हैं। इसी प्रकार इस पाठ में सामान्य रस के अवतरण विषय में, अलंकार प्रतिपादन विषय में और प्रकृति वर्णन विषय में आलोचना की गई है और अंत में वेद प्रमाण विषय की विस्तार से आलोचना की गई है। वहाँ प्रत्येक दर्शनों में अपने मत अनुसार वेद के प्रमाण को कैसे स्वीकार करें उसकी आलोचना की है।

पाठांत प्रश्न

1. वैदिक वाङ्मय विषय में संक्षेप से लिखिए।
2. रस विधान विषय पर टिप्पणी लिखिए।
3. वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त कुछ उपमा अलङ्कारों का वर्णन कीजिए।
4. उषा देवी के सौन्दर्य कल्पना विषय पर टिप्पणी लिखिए।
5. प्रकृति वर्णन के कितने भेद हैं टिप्पणी लिखिए।
6. वेद प्रमाण विषय पर विस्तृत वर्णन कीजिए।

पाठ में आये प्रश्नो के उत्तर

1.1

1. काव्य संसार में कविता जितनी प्राचीन है, उपमा अंलङ्कार भी उतना ही प्राचीन है।
2. अलङ्कार
3. अनुप्रास अंलङ्कार, उपमा अंलङ्कार, उत्प्रेक्षा अंलङ्कार, दृष्टान्त अंलङ्कार, अर्थान्तरन्यास
4. वैदिक-ऋषियों के द्वारा
5. व्यञ्जना से प्रतिपाद्यमान वैदिक अर्थो को नहीं जान सकते है।

1.2

1. वसिष्ठ के द्वारा।
2. गृत्समद-ऋषि।
3. इन्द्र को।
4. इन्द्र ने।
5. रस को।
6. श्रृंगार रस।
7. संयोग और विप्रलम्भ।
8. विप्रलम्भ।
9. यम-यमी सूक्त में (१०/१०)।

1.3

1. रूपक अलंकार
2. रूपकमयी
3. ऋग्वेद में
4. ऋतु चक्र के वर्णन में

1.4

1. उषा काल के वर्णन में प्रकृति वैसे सुशोभित होती है जैसे मणिमाला में स्वर्ण सूत्र शोभित होता है।
2. उषा अपने प्रकाश को वैसे फैलाती है, जैसे गोपालक गोचर भूमि में अपनी गायों को फैलाता है। अथवा जैसे कोई नदी अपने जल को फैलाती है।
3. हास्य मुख वाली किशोरी के समान अपने वक्ष प्रदेश को खोल देती है।

1.5

1. प्रेम
2. प्रेम
3. पृथ्वी से
4. प्रकृति का तथा उसके व्यापार का
5. पवित्र प्रेम पूर्ण जीवन में

1.6

1. लक्षण और प्रमाण।
2. 'असन्दिग्ध-अनधिगत-अबाधित अर्थ बोधक वाक्य प्रमाण' है।
3. महर्षि जैमिनि ने उनके पूर्वमीमांसा ग्रन्थ में।
4. प्रत्यक्ष अनुमान शब्द आगम प्रमाणों से।
5. आप्त पुरुषों के उपदेश ही शब्द प्रमाण है।
6. मुण्डक उपनिषद् में।
7. आत्म आश्रयत्व दोष है।
8. उसकी रचना करके उसमे ही प्रवेश करते हैं।

1.7

1. श्रुति ही
2. शब्द प्रमाण में
3. कणाद
4. वेद

॥ पहला पाठ समाप्त॥